

19-जीवन देवता की साधना-आराधना

अध्याय 1: अध्यात्म तत्त्वज्ञान का मर्म—जीवन साधना

प्रश्न १: ईश्वर को प्रसन्न करने का वास्तविक उपाय क्या है? छोटी-मोटी भेंट-पूजाएँ क्यों व्यर्थ हैं?

उत्तर: ईश्वर को छोटी-मोटी भेंट-पूजाओं या गुणगान से प्रसन्न नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह न्यायनिष्ठ और विवेकवान है। ईश्वर किसी क्षुद्र व्यक्ति की तरह चापलूसी से प्रसन्न नहीं होता। उसे प्रसन्न करने का एकमात्र उपाय अपने व्यक्तित्व में आदर्शवादिता का समावेश करना है, जिससे उत्पन्न होने वाली गरिमा के आधार पर ही वह कृपा करता है।

प्रश्न २: मनुष्य जीवन को स्रष्टा का सर्वोपरि उपहार क्यों कहा गया है?

उत्तर: मनुष्य जीवन को स्रष्टा का सर्वोपरि उपहार कहा गया है क्योंकि इसे पाने वाले से यह आशा की जाती है कि वह इसका श्रेष्ठतम सदुपयोग करेगा। मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपनी अपूर्णता को पूर्ण करके तुच्छ से महान बने और पशु प्रवृत्तियों से ऊपर उठकर देवमानव की कक्षा में प्रवेश करे।

प्रश्न ३: जीवन देवता की साधना अन्य देवी-देवताओं की साधना से किस प्रकार श्रेष्ठ है?

उत्तर: अन्य देवी-देवताओं की साधना में सफलता उपास्य की इच्छा पर निर्भर करती है और यह निश्चित नहीं है। इसके विपरीत, जीवन देवता की साधना एक कल्पवृक्ष की तरह है, जिसकी सही ढंग से अभ्यर्थना करने पर तत्काल परिणाम मिलता है। यह "इस हाथ दे, उस हाथ ले" जैसा नकद सौदा है, जहाँ आत्मपरिष्कार का फल तुरंत मिलता है।

प्रश्न ४: 'कस्तूरी के हिरण' का उदाहरण देकर लेखक क्या समझाना चाहते हैं?

उत्तर: 'कस्तूरी के हिरण' के उदाहरण से लेखक यह समझाना चाहते हैं कि मनुष्य दिव्य शक्तियों और शांति को बाहर खोजता है, जबकि उनका स्रोत उसके अपने भीतर ही है। जैसे हिरण अपनी ही नाभि में स्थित कस्तूरी की सुगंध के लिए भटकता है, वैसे ही मनुष्य परमात्मा को बाहर ढूँढ़ता है, जबकि वह उसके अंतःकरण में ही विद्यमान है।

प्रश्न ५: 'मनुष्य भटका हुआ देवता है'—इस कथन का क्या आशय है?

उत्तर: इस कथन का आशय है कि मनुष्य मूल रूप से शुद्ध और दिव्य गुणों से युक्त है, लेकिन आत्मविस्मृति के कारण वह अपने वास्तविक स्वरूप को भूल गया है। भेड़ों के झुंड में पले सिंह-शावक की तरह वह सांसारिक प्रवृत्तियों में उलझकर भटक गया है। जब उसे आत्मबोध होता है तो वह अपने देवत्व को पहचानकर सभी समस्याओं से मुक्त हो सकता है।

प्रश्न ६: साधना का मूल उद्देश्य क्या है और पात्रता का इसमें क्या महत्व है?

उत्तर: साधना का मूल उद्देश्य आवरणों को हटाकर आत्मा की प्रसुप्त शक्तियों को जगाना है। इसका लक्ष्य पात्रता और प्रखरता को बढ़ाना है। पात्रता एक चुंबक की तरह है जो दैवी शक्तियों और अनुकूल परिस्थितियों को अपनी ओर आकर्षित करती है। जैसे गहरी झील में पानी और समुद्र में नदियाँ आकर मिलती हैं, वैसे ही पात्र व्यक्ति को दैवी अनुग्रह सहज ही प्राप्त होता है।

अध्याय 2: त्रिविध प्रयोगों का संगम-समागम

प्रश्न १: जीवन के तीन प्रमुख पक्ष कौन-कौन से हैं और जीवन साधना में उनका क्या स्थान है?

उत्तर: जीवन के तीन प्रमुख पक्ष हैं—आत्मा, शरीर और संसार। इन्हें चिन्तन, चरित्र और व्यवहार भी कहा गया है। जीवन साधना का समग्र रूप वह है जिसमें इन तीनों का स्तर सुव्यवस्थित बना रहे। इनमें आत्मा (चेतना) सबसे प्रधान है, क्योंकि इसी से दृष्टिकोण बनता है और बाकी दोनों पक्ष प्रभावित होते हैं।

प्रश्न २: उपासना, साधना और आराधना में क्या अंतर है?

उत्तर: आत्मिक प्रगति के लिए ये तीन माध्यम हैं।

- **उपासना:** इसका अर्थ है ईश्वर के निकट बैठना, यानी अपने चिंतन और भाव-संवेदनाओं को उत्कृष्ट बनाना।
- **साधना:** इसका अर्थ है 'जीवन साधना' या चरित्र निर्माण, जिसमें संयम, अनुशासन और सद्गुणों का विकास शामिल है।
- **आराधना:** इसका अर्थ है पुण्य, परमार्थ और लोकमंगल के कार्यों में संलग्न रहना, यानी संसार की सेवा करना।

प्रश्न ३: पूजा-कृत्यों का वास्तविक उद्देश्य क्या है और आजकल वे निष्फल क्यों हो रहे हैं?

उत्तर: पूजा-कृत्यों का वास्तविक उद्देश्य प्रतीक पूजा के माध्यम से आत्मशिक्षण और भाव-संवेदनाओं का उन्नयन करना है। आजकल ये इसलिए निष्फल हो रहे हैं क्योंकि लोग केवल कर्मकांड पूरे करते हैं और उसके पीछे के भाव को नहीं समझते। बिना भाव-संवेदना के पूजा-कृत्य निष्प्राण शरीर की तरह होते हैं, जिनसे आत्मिक प्रगति संभव नहीं है।

प्रश्न ४: लेखक के अनुसार एक चरित्रवान व्यक्ति ही सच्चा भक्त कैसे बन सकता है?

उत्तर: लेखक के अनुसार, व्यक्तित्व को पवित्र, प्रामाणिक और प्रखर बनाने की प्रक्रिया ही जीवन साधना है। धुले हुए कपड़े पर ही रंगाई ठीक से होती है, उसी प्रकार चरित्रवान व्यक्ति ही सच्चे अर्थों में भक्त बन सकता है। दैवी वरदान, स्वर्ग और शांति जैसी दिव्य विभूतियाँ केवल चरित्रवान लोगों को ही प्राप्त होती हैं, क्योंकि उन्हीं में सद्भावना और सुसंस्कारिता के लक्षण उभरते हैं।

अध्याय 3: त्रिविध भवबन्धन एवं उनसे मुक्ति

प्रश्न १: मनुष्य के तीन प्रमुख भवबंधन कौन से हैं और वे उसे कैसे प्रभावित करते हैं?

उत्तर: मनुष्य के तीन प्रमुख भवबंधन लोभ, मोह और अहंकार हैं। इन्हीं को रावण, कुंभकरण और मेघनाथ भी कहा गया है। ये मनुष्य को पतन के गर्त में गिराते हैं और पशु, प्रेत व पिशाच जैसी जिंदगी जीने पर मजबूर करते हैं। इन्हीं के कारण व्यक्ति अनाचारी और आक्रामक बनता है।

प्रश्न २: 'लोभ' पर विजय पाने के लिए साधक को क्या करना चाहिए?

उत्तर: लोभ पर विजय पाने के लिए साधक को 'सादा जीवन-उच्च विचार' का सिद्धांत अपनाना चाहिए। उसे ईमानदारी और परिश्रम की कमाई पर संतोष करना चाहिए। यदि अधिक कमाया भी जाए तो उसे निजी खर्च में सीमित रखकर शेष को सत्प्रवृत्तियों के संवर्धन में लगाना चाहिए। परिग्रह को पाप समझकर विलासिता से बचना चाहिए।

प्रश्न ३: 'मोह' से मुक्ति का क्या उपाय बताया गया है?

उत्तर: मोह छोटे दायरे में आत्मीयता को सीमित कर देता है, जिससे व्यक्ति केवल अपने शरीर और परिवार के

बारे में सोचता है। इससे मुक्ति के लिए 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' (सबमें स्वयं को देखना) और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' (पूरी धरती ही परिवार है) की दृष्टि विकसित करनी चाहिए। पारिवारिक उत्तरदायित्व निभाते हुए भी लोकमंगल के कर्तव्य को नहीं भूलना चाहिए।

प्रश्न ४: 'अहंकार' को आत्मघाती शत्रु क्यों माना गया है?

उत्तर: अहंकार को आत्मघाती शत्रु माना गया है क्योंकि यह व्यक्ति को उद्धत, अशिष्ट और क्रोधित बनाता है। अहंकारी व्यक्ति अपनी प्रशंसा और दूसरों की निंदा में लगा रहता है और दूसरों को नीचा दिखाने का प्रयास करता है। यह फैशन, ठाठ-बाट, ईर्ष्या और द्वेष जैसे दुर्गुणों को जन्म देता है, जो आत्मपरिष्कार के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है।

अध्याय 4: सार्थक, सुलभ एवं समग्र साधना

प्रश्न १: आत्मबल को सभी बलों का स्रोत क्यों कहा गया है?

उत्तर: आत्मबल को सभी बलों का स्रोत इसलिए कहा गया है क्योंकि इसी के आधार पर अन्य सभी बल प्राप्त किए जा सकते हैं और उपलब्धियों का सदुपयोग संभव होता है। व्यक्तित्व की उत्कृष्टता के आधार पर प्रतिकूल परिस्थितियों को भी अनुकूल बनाया जा सकता है। इतिहास में कई महापुरुषों ने निर्धनता के बावजूद आत्मबल से ही सफलता के शिखर को छुआ।

प्रश्न २: 'मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है'—इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर: इस कथन का अर्थ है कि मनुष्य का उठना और गिरना उसकी अपनी आत्मचेतना और कर्मों पर निर्भर करता है। चेतना संसार की सबसे बड़ी शक्ति है। यदि व्यक्ति अपनी चेतना को सद्गुणों से उन्नत करता है, तो वह अभाव में भी सुखी रहता है। इसके विपरीत, दुर्गुणों से भरा व्यक्ति सभी सुविधाएँ होते हुए भी दुर्गति को प्राप्त होता है।

प्रश्न ३: प्रज्ञायोग या जीवन साधना को समग्र साधना क्यों कहा गया है?

उत्तर: प्रज्ञायोग को समग्र साधना इसलिए कहा गया है क्योंकि इसमें केवल जप, ध्यान जैसे कर्मकांड ही नहीं, बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में मानवी गरिमा को उभारने वाले पक्ष भी शामिल हैं। इसमें शरीर, समय, अर्थ और विचार के संयम को अनिवार्य माना गया है। यह साधक को कर्तव्य, मान्यता और अध्यात्म के क्षेत्र में विवेकशील और आदर्शवादी बनाती है।

प्रश्न ४: इस अध्याय में 'एकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाय' उक्ति का प्रयोग किस सन्दर्भ में हुआ है?

उत्तर: इस उक्ति का प्रयोग आत्मबल के महत्व को बताने के लिए हुआ है। लेखक कहते हैं कि यदि व्यक्ति केवल अपने आत्मबल को साध ले (उन्नत कर ले), तो अन्य सभी प्रकार की प्रगतियाँ और सफलताएँ स्वयं ही सध जाती हैं। लेकिन यदि आत्मबल का अभाव हो तो अनेक समृद्धियाँ होते हुए भी व्यक्ति मानवी गरिमा की कसौटी पर खोटा ही सिद्ध होता है।

अध्याय 5: व्यावहारिक साधना के चार पक्ष

प्रश्न १: प्रज्ञायोग की दो प्रमुख संध्याएँ कौन-सी हैं और उनका क्या महत्व है?

उत्तर: प्रज्ञायोग की दो प्रमुख संध्याएँ हैं—आत्मबोध (प्रातःकाल) और तत्त्व बोध (रात्रि)। प्रातः उठते ही 'हर दिन नया जन्म' की भावना करना आत्मबोध है, जो दिनभर की आदर्श दिनचर्या बनाने में मदद करता है। रात्रि को सोते समय 'शयन एक दैनिक मरण है' का अनुभव करना तत्त्व बोध है। यह दिनभर के कार्यों की समीक्षा और अगले दिन सुधार का संकल्प लेने के लिए प्रेरित करता है।

प्रश्न २: प्रज्ञायोग के अनुसार 'भजन' की प्रक्रिया क्या है?

उत्तर: भजन, प्रज्ञायोग का तीसरा चरण है जिसे नित्य कर्म के बाद किया जाता है। इसमें इष्टदेव के प्रतीक (गायत्री छवि या दीपक) की पूजा की जाती है। पूजा सामग्री जैसे चंदन, दीपक, पुष्प आदि के गुणों को जीवन में धारण करने की भावना की जाती है। इसके बाद गायत्री मंत्र या ओंकार का जप और उगते सूर्य का ध्यान किया जाता है।

प्रश्न ३: प्रज्ञायोग का चौथा चरण 'मनन' क्या है और इसे कैसे किया जाता है?

उत्तर: 'मनन' प्रज्ञायोग का चौथा चरण है, जिसे मध्याह्न के बाद किया जाता है। इसमें एकांत में बैठकर अपनी वर्तमान स्थिति की समीक्षा की जाती है और आदर्शों के मापदंड पर कमियों को पहचानकर उन्हें दूर करने की योजना बनाई जाती है। यह आत्मसुधार, आत्म-निर्माण और आत्मविकास की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है।

प्रश्न ४: चार प्रकार के संयम कौन-कौन से हैं जिनका अभ्यास मनन के दौरान करने को कहा गया है?

उत्तर: मनन के दौरान आत्मसमीक्षा के लिए चार संयमों पर ध्यान देने को कहा गया है:

1. **इन्द्रियसंयम:** जीभ, वाणी और कामुकता पर नियंत्रण।
2. **समयसंयम:** आलस्य और दुर्व्यसनों से बचकर हर क्षण का सदुपयोग।
3. **अर्थसंयम:** ईमानदारी से कमाना और सादा जीवन जीते हुए बचत को परमार्थ में लगाना।
4. **विचारसंयम:** मन में अनैतिक और व्यर्थ विचारों को आने से रोकना और रचनात्मक चिंतन करना।

अध्याय 6: जीवन साधना के सुनिश्चित सूत्र

प्रश्न १: सच्ची और झूठी भक्ति की पहचान कैसे की जा सकती है?

उत्तर: सच्ची भक्ति की पहचान यह है कि भक्त में अपने इष्टदेव के गुण आने लगते हैं। जैसे आग के संपर्क में आकर ईंधन भी अग्नि बन जाता है, वैसे ही ईश्वर भक्त में प्रामाणिकता और प्रखरता की विभूतियाँ उभरनी चाहिए। यदि किसी की उपासना के बाद भी उसके चिंतन, चरित्र और व्यवहार में उत्कृष्टता नहीं आती, तो उसकी भक्ति झूठी है।

प्रश्न २: जीवन को सुविकसित करने की तुलना कृषि कार्य से क्यों की गई है?

उत्तर: जैसे किसान खेत से खरपतवार और कंकड़-पत्थर निकालकर उसे परिशोधित करता है और खाद-पानी देकर फसल का पोषण करता है, उसी प्रकार जीवन रूपी खेत से भी दुष्प्रवृत्तियों को उखाड़ना (परिशोधन) और सत्प्रवृत्तियों को विकसित करना (परिपोषण) आवश्यक है। इसी सतत प्रयास से जीवन सुविकसित होता है।

प्रश्न ३: आत्म-समीक्षा क्यों आवश्यक है और इसमें सबसे बड़ी कठिनाई क्या है?

उत्तर: आत्म-समीक्षा इसलिए आवश्यक है क्योंकि इसके बिना व्यक्ति अपने दुर्गुणों और सद्गुणों की कमी को पहचान नहीं सकता, और सुधार की प्रक्रिया शुरू नहीं कर सकता। इसमें सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि हर व्यक्ति स्वभाव से स्वयं को निर्दोष और सर्वगुण संपन्न मानता है, जो सुधार और विकास दोनों में बाधक है।

प्रश्न ४: व्यक्तित्व के विकास के लिए किन चार सद्गुणों को अपनाने की सलाह दी गई है?

उत्तर: व्यक्तित्व के विकास के लिए चार सद्गुणों को अपनाने की सलाह दी गई है:

1. **समझदारी:** उचित-अनुचित का विवेक।
2. **ईमानदारी:** प्रामाणिकता और सत्यनिष्ठा।

3. जिम्मेदारी: अपने कर्तव्यों का निर्वाह।

4. बहादुरी: सन्मार्ग पर चलने का साहस। इन गुणों को अपनाने से व्यक्ति की मनोदशा उदार बनती है और वह दूसरों की सेवा करने योग्य बनता है।

अध्याय 7: साप्ताहिक और अर्द्ध वार्षिक साधनाएँ

प्रश्न १: दैनिक साधना के अलावा विशेष साधना पर्वों की आवश्यकता क्यों होती है?

उत्तर: जीवन में एक जैसा ढर्रा नीरसता ला देता है और उत्साह कम हो जाता है। जैसे मोटर के पहियों में हवा और रेल में कोयला-पानी फिर से भरना पड़ता है, वैसे ही जीवन में नई स्फूर्ति और ताजगी लाने के लिए साप्ताहिक और अर्द्ध वार्षिक जैसे विशेष साधना पर्वों की आवश्यकता होती है। इनसे बीच में आने वाली शिथिलता दूर होती है।

प्रश्न २: साप्ताहिक साधना में किन चार विशेष नियमों का पालन करने को कहा गया है?

उत्तर: साप्ताहिक विशेष साधना में चार नियमों का पालन करने के लिए कहा गया है:

1. उपवास: जिह्वा संयम और पेट को आराम देने के लिए।
2. ब्रह्मचर्य: शारीरिक और मानसिक पवित्रता के लिए।
3. मौन: वाणी के संयम के लिए।
4. प्राण संचय: प्राणायाम द्वारा विश्वव्यापी प्राण चेतना को शरीर में धारण करने के लिए।

प्रश्न ३: नवरात्रियों में की जाने वाली अर्द्ध वार्षिक साधना की विधि क्या है?

उत्तर: यह साधना चैत्र और आश्विन की नवरात्रियों में नौ-नौ दिन के लिए की जाती है। इसमें प्रतिदिन २७ माला गायत्री मंत्र का जप करके कुल २४ हजार जप पूरे किए जाते हैं। साथ ही उपवास, ब्रह्मचर्य, भूमि शयन और अपनी शारीरिक सेवा स्वयं करने जैसे तप-संयम के नियमों का पालन किया जाता है। अंत में हवन और ब्रह्मभोज या सत्साहित्य वितरण किया जाता है।

प्रश्न ४: ब्रह्मभोज का आधुनिक और सार्थक रूप क्या हो सकता है?

उत्तर: ब्रह्मभोज का उद्देश्य अपने अनुदान का लाभ अधिक लोगों तक पहुँचाना है। इसका आधुनिक और अधिक सार्थक रूप मिष्ठान्न वितरण की अपेक्षा सस्ता और प्रेरणादायक युग साहित्य वितरित करना हो सकता है। इससे लोगों तक ज्ञान पहुँचता है और सत्संकल्प का विस्तार होता है, जो किसी एक व्यक्ति का पेट भरने से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

अध्याय 8: आराधना और ज्ञानयज्ञ

प्रश्न १: आत्मिक समर्थता के तीन चिह्न कौन-कौन से हैं?

उत्तर: आत्मिक समर्थता के तीन चिह्न हैं:

1. चिन्तन में उत्कृष्टता: विचारों का आदर्शवादी और विवेकपूर्ण होना।
2. चरित्र में निष्ठा: व्यवहार में प्रामाणिकता और दृढ़ता का होना।
3. व्यवहार में पुण्य परमार्थ: सेवा और लोकमंगल के कार्यों में सक्रियता। इन्हीं को क्रमशः उपासना, साधना और आराधना भी कहा गया है।

प्रश्न २: दान करते समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए? मुफ्तखोरी को बढ़ावा देना दान क्यों नहीं है?

उत्तर: दान करते समय औचित्य और सही परिणाम का ध्यान रखना चाहिए। दान ऐसा हो जो व्यक्ति को स्वावलंबी बनाए, न कि पराश्रित। मुफ्तखोरी को बढ़ावा देना दान नहीं है, क्योंकि इससे व्यक्ति में निठल्लेपन की आदत पड़ती है, हीनता का भाव आता है और देने वाले का अहंकार बढ़ता है। यह दोनों पक्षों के लिए अहितकर है।

प्रश्न ३: ज्ञान-दान को सभी दानों में सर्वोपरि क्यों माना गया है?

उत्तर: ज्ञान-दान को सर्वोपरि माना गया है क्योंकि सत्-चिंतन के अभाव में ही लोग दुर्गुण अपनाकर पतन के गर्त में गिरते हैं। यदि व्यक्ति को सही चिंतन का मार्ग मिल जाए, तो वह अपनी सभी समस्याओं का समाधान स्वयं कर सकता है और उन्नति के पथ पर आगे बढ़ सकता है। यह व्यक्ति की मूल समस्या का समाधान करता है।

प्रश्न ४: आज के युग में ज्ञानयज्ञ को प्रभावी बनाने के लिए किन माध्यमों का उपयोग किया जा सकता है?

उत्तर: आज के युग में ज्ञानयज्ञ को प्रभावी बनाने के लिए झोला पुस्तकालय चलाना, सत्साहित्य वितरित करना, विचारगोष्ठियाँ और सत्संग आयोजित करना जैसे उपाय अपनाने चाहिए। इसके अलावा आधुनिक तकनीक जैसे टेप रिकॉर्डर, स्लाइड प्रोजेक्टर, वीडियो कैसेट और संगीत टोलियों का भी प्रयोग किया जा सकता है ताकि ज्ञान और प्रेरणा अधिक से अधिक लोगों तक पहुँच सके।

प्रश्न ५: लेखक के अनुसार श्रेष्ठतम सेवा क्या है?

उत्तर: लेखक के अनुसार, लोगों को सुविधा देना सामान्य सेवा है और किसी की पीड़ा दूर करना श्रेष्ठतर सेवा है। लेकिन श्रेष्ठतम सेवा वह है जिससे व्यक्ति को पतन के मार्ग से हटाकर उन्नति की ओर मोड़ा जा सके। यह सेवा भौतिक सम्पदा से नहीं, बल्कि दैवी सम्पदा (ज्ञान और प्रेरणा) से की जाती है और ज्ञानयज्ञ के माध्यम से कोई भी इसे अपना सकता है।